



परमात्मप्रकाश

- योगींदुदेव

Index



गाथा / सूत्र	विषय
001)	मंगलाचरण
002)	सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार
003)	सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार
004)	सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार
005)	सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार
006)	अरिहंत परमेष्ठी को नमस्कार
007)	आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी को नमस्कार
008)	प्रभाकरभट्ट द्वारा विनती
009)	विनती
010)	परमात्मा के कथन की विनती
011)	तीन प्रकार के आत्मा को कहने की प्रतिज्ञा
012)	तीन प्रकार के आत्मा को जानने का प्रयोजन
013)	बहिरात्मा
014)	अन्तरात्मा
015)	परमात्मा
016)	ध्येय
017)	लक्ष्य के लक्षण
018)	शान्त और शिव
019-021)	निरञ्जन
022)	परमात्मा - ध्यान के साधन नहीं
023)	परमात्मा - ज्ञान का साधन नहीं
024)	परमात्मा - अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमयी
025)	परमात्मा - शरीर रहित लोक के शिखर पर स्थित
026)	परमात्मा - शरीर में स्थित
027)	परमात्मा - अंतर-दृष्टि के प्रेरणा
028)	[परमात्मा - शारीरिक और मानसिक सुख-दुःख रहित
029)	[परमात्मा - देह में रहते हुए भी स्वभाव में स्थित
030)	भेद-ज्ञान की प्रेरणा
031)	आत्मा का लक्षण
032)	ध्यान की विधि और उसका फल
033)	देह में ही परमात्मा का निवास
034)	परमात्मा का एक अद्भुत लक्षण
035)	परमात्मा - समभाव द्वारा परम आनन्द की प्राप्ति
036)	आत्मा का परम आत्मा स्वरूप

037)	पूर्व कथन की पुष्टि
038)	परमात्मा - केवलज्ञान में स्वयं प्रतिभासित
039)	परमात्मा - ध्यान का ध्येय
040)	परमात्मा - संसार को उपजाता है
041)	परमात्मा - संसार में रहते हुए भी संसार से परे
042)	परमात्मा - उत्कृष्ट समाधि / तप द्वारा ही जो जाना जाता है
043)	परमात्मा - उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त
044)	शरीर और आत्मा के दृढ़ सम्बन्ध का सीधे साधे शब्दों में कथन
045)	देह से आत्मा का विशिष्ट महत्व
046)	परमात्मा का वीतराग स्वरूप
047)	परमात्मा के ज्ञान के स्थान का कथन
048)	कर्म बंधन से मुक्त परमात्मा का स्वरूप
049)	कर्म बंधन से मुक्त परमात्मा का स्वरूप
050)	आत्मा क्या है
051)	आत्मा का स्वरूप
052)	आत्मा का सर्वव्यापक स्वरूप
053)	आत्मा का जड स्वरूप
054)	आत्मा का चरम शरीर प्रमाणरूप स्वरूप
055)	आत्मा के शून्य स्वरूप का कथन
056)	आत्मा के लक्षण
057)	आत्मा के लक्षण का स्पष्टीकरण
059)	आत्मा और कर्म का परस्पर सम्बन्ध
060)	सभी जीवों का प्राण कर्म
061)	कर्म के कारण जीव को स्वभाव-लाभ नहीं
062)	विषय-कषायों में लिप्तता से कर्म-बंध
063)	इन्द्रियाँ, मन, समस्त विभाव, दुःख कर्म-जनित
064)	परमार्थ से दुःख-सुख कर्म जनित
065)	परमार्थ से बन्ध और मोक्ष कर्मजनित



!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नमः !!

श्रीमद्-भगवत्योगीन्दु-देव-प्रणीत

श्री

परमात्मप्रकाश

मूल प्राकृत गाथा,

आभार :

!! नमः श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-परमात्मप्रकाश नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तारः श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तारः श्री-गणधर-देवाः प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य आचार्य श्री-भगवत्योगीन्दु-देव विरचितं ॥

॥ श्रोतारः सावधान-तया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

+ मंगलाचरण -

जे जाया झाणगियँ कम्म-कलंक डहेवि
णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि ॥१॥

अन्वयार्थ : [ये] जो (भगवान्) [ध्यानाग्निना] ध्यानरूपी अग्नि से [कर्म-कलङ्कान्] पहले कर्मरूपी मैलों को [दग्ध्वा] भस्म करके [नित्यनिरंजनज्ञानमयाः जाताः] नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं, [तान्] उन [परमात्मनः] सिद्धों को [नत्वा] नमस्कार करके मैं परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ ।

+ सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार -

ते वंदउँ सिरि-सिद्ध-गण होसहिँ जे वि अणंत
सिवमय-णिरुवम-णाणमय परम-समाहि भजंत ॥२॥

अन्वयार्थ : और भी उन मंगलमय, अनुपम, ज्ञानयुक्त, अनन्त श्री सिद्ध समूहों को नमस्कार करता हूँ जो (आगामी काल में) परम समाधि को अनुभव करते हुए (सिद्ध) होंगे।

+ सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार -

ते हउँ वंदउँ सिद्ध-गण अच्छहिँ जे वि हवंत
परम-समाहि-महगियँ कम्मिंधणइँ हुणंत ॥३॥

अन्वयार्थ : और भी उन सिद्ध समूहों को प्रणाम करता हूँ जो (सिद्ध) परमसमाधिरूप उत्तम अग्नि में कर्मरूपी ईंधन को होम करते हुए (तथा) (सिद्धत्व को) प्राप्त करते हुए विद्यमान हैं ।

+ सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार -

ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण जे णिव्वाणि वसंति
णाणिं तिहुयणि गरुया वि भव-सायरि ण पडंति ॥४॥

अन्वयार्थ : [पुनः तान्] फिर उन [सिद्धगणान् वन्दे] सिद्धों को वन्दता हूँ, [ये निर्वाणे वसन्ति] जो मोक्ष में तिष्ठते हैं, [ज्ञानेन त्रिभुवने गुरुका अपि] ज्ञान द्वारा तीन-लोक में गुरु हैं, तो भी [भवसागरे न पतन्ति] संसार-समुद्र में नहीं पडते ।

+ सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार -

ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण जे अप्पाणि वसंत
लोयालोउ वि सयलु इहु अच्छहिँ विमलु णियंत ॥५॥

अन्वयार्थ : [अहं पुनः तान्] मैं फिर उन [सिद्धगणान्] सिद्धों के समूह को [वन्दे] वंदता हूँ [ये आत्मनि वसन्तः] जो अपने में तिष्ठते हुए [सकलं] समस्त [लोकालोकं] लोक अलोक को [विमलं] स्पष्ट [पश्यन्तः] देखते हुए [तिष्ठन्ति] ठहरते हैं ।

+ अरिहंत परमेष्ठी को नमस्कार -

केवल-दंसण-णाणमय केवल-सुख-सहाव
जिणवर वंदउँ भत्तियए जेहिँ पयासिय भाव ॥६॥

अन्वयार्थ : [केवलदर्शनज्ञानमयाः] केवलदर्शन-ज्ञानमयी, [केवलसुखस्वभावाः] केवलसुख स्वभावी [जिनवरान्] जिनेन्द्र भगवान को [भक्त्या] भक्ति से [वन्दे] नमस्कार करता हूँ [यैः] जिन्होंने [भावाः] तत्वों (जीवादिक सकल पदार्थों) को [प्रकाशिताः] प्रकाशित किया ।

+ आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी को नमस्कार -

जे परमप्पु णियंति मुणि परम-समाहि धरेवि
परमाणंदह कारणिण तिण्णि वि ते वि णवेवि ॥७॥

अन्वयार्थ : [ये मुनयः] जो [मुनयः] मौन (मुनि) [परमसमाधिं] परमसमाधि को [धृत्वा] धारण कर [परमानंदस्य कारणेन] परमसुख के लिए [परमात्मानं पश्यन्ति] परमात्मा को देखते हैं [त्रीन् अपि] तीनों ही आचार्य, उपाध्याय, साधु, [तान् अपि] उन्हें भी [नत्वा] नमस्कार हो ।

+ प्रभाकरभट्ट द्वारा विनती -

भाविं पणविवि पंच-गुरु सिरि-जोइंदु-जिणाउ
भट्टपहायरि विण्णविउ विमलु करेविणु भाउ ॥८॥

अन्वयार्थ : [भावेन पञ्चगुरून् प्रणम्य] भावों से पंच-परमेष्ठियों को नमस्कार कर [भट्टप्रभाकरेण] प्रभाकरभट्ट [भावं विमलं कृत्वा] अपने परिणामों को निर्मल करके [श्रीयोगीन्द्रजिनः] श्रीयोगीन्द्रदेव से [विज्ञापितः] शुद्धात्मतत्त्व के जानने के लिये महाभक्ति से विनती करते हैं ॥८॥

+ विनती -

गउ संसारि वसंताहँ सामिय कालु अणंतु
पर मइँ किं पि ण पत्तु सुहु दुक्खु जि पत्तु महंतु ॥९॥

अन्वयार्थ : [हे स्वामिन्] हे स्वामी, [संसारे वसतां] इस संसार में रहते हुए [अनंतः कालः गतः] अनंतकाल बीत गया, [परं] लेकिन [मया किमपि सुखं] मैंने कुछ भी सुख [न प्राप्तं] नहीं पाया [महत् दुखं एव प्राप्तं] महान् दुःख ही पाया ।

+ परमात्मा के कथन की विनती -

चउ-गइ-दुक्खहँ तत्ताहँ जो परमप्पउ कोइ
चउ-गइ-दुक्ख-विणासयरु कहहु पसाएँ सो वि ॥१०॥

अन्वयार्थ : [चतुर्गतिदुःखैः] चारों गतियों के दुःखों से [तप्तानां] दुखीयों के लिए [चतुर्गतिदुःखविनाशकरः] चार गतियों के दुःखों का विनाश करनेवाला [यः कश्चित्] जो कोई [परमात्मा] चिदानंद परमात्मा है, [तमपि] उसको [प्रसादेन कथय] कृपा करके कहिए ।

+ तीन प्रकार के आत्मा को कहने की प्रतिज्ञा -

पुणु पुणु पणविवि पंच-गुरु भावें चित्ति धरेवि
भट्टपहायर णिसुणि तुहुँ अप्पा तिविहु कहेवि ॥११॥

अन्वयार्थ : [पुनः पुनः पञ्चगुरुन् प्रणम्य] बारम्बार पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार की [भावेन] भावना [चित्ते धृत्वा] मन में धारण करके [त्रिविधं] तीन प्रकार के [आत्मानं] आत्मा को [कथयामि] कहता हूँ, सो हे प्रभाकरभट्ट, [त्वं निश्चय] तू निश्चय से सुन ।

+ तीन प्रकार के आत्मा को जानने का प्रयोजन -

अप्पा ति-विहु मुणेवि लहु मूढउ मेल्लहि भाउ
मुणि सण्णारणें णाणमउ जो परमप्प-सहाउ ॥१२॥

अन्वयार्थ : [आत्मानं त्रिविधं मत्वा] आत्मा को तीन प्रकार का जानकर [मूढं भावम्] अज्ञान (बहिरात्म स्वरूप) भाव को [लघु मुञ्च] शीघ्र ही छोड़, और [स्वज्ञानेन] अपने को (स्वसंवेदन) ज्ञान से [मन्यस्व] जानकर (अंतरात्मा होकर) [ज्ञानमयः] ज्ञानमय (केवलज्ञान स्वरूप) हो [यः परमात्मस्वभावः] जो कि परमात्मा का स्वभाव है ।

+ बहिरात्मा -

मूढु वियक्खणु बंभु परु अप्पा ति-विहु हवेइ
देहु जि अप्पा जो मुणइ सो जणु मूढु हवेइ ॥१३॥

अन्वयार्थ : [मूढः] अज्ञानी बहिरात्मा, [विचक्षणः] अंतरात्मा [ब्रह्मा परः] और परमात्मा इसप्रकार आत्मा [त्रिविधो भवति] तीन तरह का है, [यः] जो [देहमेव] देह को ही [आत्मानं मनुते] आत्मा मानते हैं, [स जनः] वे लोग [मूढः भवति] बहिरात्मा हैं ।

देह-विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ
परम-समाहि-परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ ॥१४॥

अन्वयार्थ : [यः परमात्मानं] जो परमात्मा को [देहविभिन्नं ज्ञानमयं पश्यति] शरीर से जुदा ज्ञानमय देखता है, [स एव] वही [परमसमाधिपरिस्थितः] परम-समाधि में स्थित [पण्डितः भवति] अन्तरात्मा है ।

+ परमात्मा -

अप्पा लद्धउ णाणमउ कम्म-विमुक्केँ जेण
मेल्लिवि सयलु वि दव्वु परु सो परु मुणहि मणेण ॥१५॥

अन्वयार्थ : [येन कर्मविमुक्तेन] जिसने ज्ञानावरणादि कर्मों का नाश करके [सकलमपि परं द्रव्यं मुक्त्वा] और सब ही परद्रव्यों को छोड़ करके [ज्ञानमयः आत्मा लब्धः] ज्ञानमयी आत्मा पाया है, [तं मनसा] उसको मन से [परं मन्यस्व] परमात्मा जानो ।

+ ध्येय -

तिहुयण-वंदिउ सिद्धि-गउ हरि-हर झायहिँ जो जि
लक्खु अलक्खेँ धरिवि थिरु मुणि परमप्पउ सो जि ॥१६॥

अन्वयार्थ : [त्रिभुवनवंदितं] तीनलोक द्वारा वंदनीय [सिद्धिगतं] सिद्धि प्राप्त [हरिहराः] इन्द्र, नारायण आदि [यं एव ध्यायन्ति] जिसे ध्यावते हैं, [लक्ष्यं अलक्ष्ये] निर्विकल्प चित्त में [स्थिरं धृत्वा] स्थिर होकर [तमेव] तू भी [परमात्मानं मन्यस्व] उस परमात्मा को जान ।

+ लक्ष्य के लक्षण -

णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंद-सहाउ
जो एहउ सो संतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१७॥

अन्वयार्थ : [नित्यः निरञ्जनः ज्ञानमयः] अविनाशी, रागादिक उपाधि से रहित, केवलज्ञानमयी और [परमानंदस्वभावः] परमानंद स्वाभावी [यः ईद्रशः सः] जो ऐसा है, वही [शान्तः शिवः] शांतिरूप और शिवस्वरूप है, [तस्य भावं जानीहि] उसे ही स्वभाव जान ।

+ शान्त और शिव -

जो णिय-भाउ ण परिहरइ जो पर-भाउ ण लेइ
जाणइ सयलु वि णिच्चु पर सो सिउ संतु हवेइ ॥१८॥

अन्वयार्थ : [यः निज भावं न परिहरति] जो (अनंतज्ञानादिरूप) अपने भावों को नहीं छोड़ता [यः परभावं न लाति] और जो काम-क्रोधादिरूप पर-भावों को ग्रहण नहीं करता, [सकलमपि] समस्त को ही (तीन लोक तीन काल की सब चीजों को) [परं नित्यं जानाति] केवल हमेशा जानता है, [सः शिवः शांतः भवति] वही शिवस्वरूप तथा शांतस्वरूप है ।

+ निरञ्जन -

जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु
जासु ण जम्मणु मरणु णवि णाउ णिरंजणु तासु ॥१९॥
जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणु ॥२०॥
अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु अत्थि ण हरिसु विसाउ
अत्थि ण एक्कु वि दोसु जसु सो जि णिरंजणु भाउ ॥२१॥

अन्वयार्थ : [यस्य वर्णः न गंधः रसः न] जिसके रंग नहीं, गंध, रस नहीं, [यस्य शब्दः न स्पर्शः न] जिसके शब्द नहीं, स्पर्श नहीं, [यस्य जन्म न मरणं नापि] जिसके जन्म नहीं, मरण भी नहीं, [तस्य निरंजनं नाम] उसका निरंजन नाम है । [यस्य क्रोधः न] जिसके क्रोध नहीं, [मोहः मदः न] मोह तथा मद नहीं, [यस्य माया न मानः न] जिसके माया व मान नहीं, और [यस्य] जिसके [स्थानं न] ध्यान के स्थान (नाभि, हृदय, मस्तक, आदि) नहीं, [ध्यानं न] चित्त के रोकनेरूप ध्यान नहीं, [स एव] उसे भी निरंजन जानो । [यस्य पुण्यं न पापं न अस्ति] जिसके पुण्य नहीं, तथा पाप नहीं, [हर्षः विषादः न] हर्ष व शोक नहीं, [यस्य एकः अपि दोषः] और जिसके (क्षुधा-पिपासा आदि) एक भी दोष नहीं, [स एव निरंजनः भावय] उसी को निरंजन जान ।

+ परमात्मा - ध्यान के साधन नहीं -

जासु ण धारणु धेउ ण वि जासु ण जंतु ण मंतु
जासु ण मंडलु मुद्द ण वि सो मुणि देउँ अणंतु ॥२२॥

अन्वयार्थ : [यस्य धारणा न] जिसके (कुंभक, पूरक, रेचकनामवाली) वायुधारणादिक नहीं, [ध्येयं नापि] (प्रतिमा आदि) ध्यान करने योग्य पदार्थ भी नहीं, [यस्य यन्त्रः न] जिसके (अक्षरों की रचनारूप स्तंभन मोहनादि विषयक) यंत्र नहीं, [मन्त्रः न] (अनेक तरहके अक्षरोंके बोलनेरूप) मंत्र नहीं, [यस्य मण्डलं न] और जिसके (जलमंडल, वायुमंडल, अग्निमंडल, पृथ्वीमंडलादिक) पवन के भेद नहीं, [मुद्रा न] (गारुडमुद्रा, ज्ञानमुद्रा आदि) मुद्रा नहीं, [तं अनन्तम् देवम् मन्यस्व] ऐसा अविनाशी परमात्मदेव जानो ।

+ परमात्मा - ज्ञान का साधन नहीं -

वेयहिँ सत्थहिँ इंदियहिँ जो जिय मुणहु ण जाइ
णिम्मल-झाणहँ जो विसउ सो परमप्पु अणाइ ॥२३॥

अन्वयार्थ : [वेदैः] वेद से, [शास्त्रैः] शास्त्र से, [इन्द्रियैः यः मन्तुं न याति] इंद्रिय (और मन) से भी जो जाना नहीं जाता, [यः निर्मलध्यानस्य विषयः] जो निर्मल ध्यान का विषय है, [स अनादिः परमात्मा] वही आदि अंत रहित परमात्मा है ।

+ परमात्मा - अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमयी -

केवल-दंसण -णाणमउ केवल-सुख सहाउ
केवल-वीरिउ सो मुणहि जो जि परावरु भाउ ॥२४॥

अन्वयार्थ : [यः केवलदर्शन ज्ञानमयः] जो अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञानमयी, [केवलसुखस्वभावः] अनन्तसुख स्वभावी, [केवलवीर्यः] अनन्तवीर्यमयी है, [स एव परापरभावः मन्यस्व] उसे ही लोक और परलोक में उत्कृष्ट (परमात्मा) मानो ।

+ परमात्मा - शरीर रहित लोक के शिखर पर स्थित -

एयहिँ जुत्तउ लक्खणहिँ जो परु णिक्कलु देउ
सो तहिँ णिवसइ परम-पइ जो तइलोयहँ झेउ ॥२५॥

अन्वयार्थ : [एतैः लक्षणैः युक्तः] उन लक्षणों से सहित [परः निष्कलः] सबसे उत्कृष्ट शरीर-रहित, [देवः यः सः] जो देव वही [तत्र परमपदे] उस लोक के शिखर पर [निवसति यः] विराजमान है, जो कि [त्रैलोक्यस्य ध्येयः] तीन लोक का ध्येय है ।

+ परमात्मा - शरीर में स्थित -

जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिँ णिवसइ देउ
तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहं मं करि भेउ ॥२६॥

अन्वयार्थ : [यादृशः निर्मलः ज्ञानमयः] जैसा निर्मल केवलज्ञानमय [देवः सिद्धौ] देव सिद्ध-गति में [निवसति] रहता है, [तादृशः] वैसा ही [परः ब्रह्मा] परम-ब्रह्म (परमात्मा) [देहे] शरीर में [निवसति] तिष्ठता है, [भेदम् मा कुरु] भेद मत कर ।

+ परमात्मा - अंतर-दृष्टि के प्रेरणा -

जें दिट्ठं तुट्ठंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ
सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ ॥२७॥

अन्वयार्थ : [येन द्रष्टेन लघु] जिसे देखने से शीघ्र ही [पूर्वकृतानि कर्माणि] पूर्व-कृत कर्म [व्रुटयन्ति] चूर्ण हो जाते हैं, [तं परं] उस परमात्मा के [देहं वसन्तं] देह में बसते हुए भी [हे योगिन्] हे योगी [किं न जानासि] तू क्यों नहीं जानता ?

+ [परमात्मा - शारीरिक और मानसिक सुख-दुःख रहित -

जित्थु ण इंदिय-सुह-दुहइँ जित्थु ण मण-वावारु
सो अप्पा मुणि जीव तुहु अण्णु परिं अवहारु ॥२८॥

अन्वयार्थ : [यत्र इन्द्रियसुखदुःखानि न] जहाँ इन्द्रिय-जनित सुख-दुःख नहीं, [यत्र मनोव्यापारः न] जहाँ मन का व्यापार नहीं, [तं हे जीव त्वं] उसे हे जीव तू [आत्मानं मन्यस्व] आत्मा मान, [अन्यत्परम् अपहर] अन्य सबको छोड़ ।

+ [परमात्मा - देह में रहते हुए भी स्वभाव में स्थित -

देहादेहहिं जो वसइ भैयाभय-णएण सो अप्पा मुणि जीव तुहुं किं अण्णें बहुएण ॥२९॥

अन्वयार्थ : [यः भेदाभेदनयेन देहादेहयोः वसति] जो व्यवहारनय से देह में और निश्चयनय से आत्म-स्वभाव में ठहरा हुआ है, [तं हे जीव त्वं] उसे हे जीव, तू [आत्मानं मन्यस्व] परमात्मा जान, [अन्येन बहुना किम्] अन्य से क्या (प्रयोजन) ?

+ भेद-ज्ञान की प्रेरणा -

जीवाजीव म एक्कु करि लक्खण-भेएँ भेउ जो परु सो परु भणमि मुणि अप्पा अप्पु अभेउ ॥३०॥

अन्वयार्थ : [जीवाजीवौ एकौ मा कार्षीः] जीव और अजीव को एक मतकर [लक्षणभेदेन भेदः] लक्षण के भेद से भेद कर [यत्परं तत्परं मन्यस्व] जो पर हैं उनको पर जान [च आत्मनः आत्मना अभेदः] और आत्मा का अपने से अभेद जान [भणामि] ऐसा मैं कहता हूँ । ।

+ आत्मा का लक्षण -

अमणु अणिंदिउ णाणमउ मुत्ति-विरहिउ चिमित्तु अप्पा इंदिय-विसउ णवि लक्खणु एहु णिरुत्तु ॥३१॥

अन्वयार्थ : [आत्मा] आत्मा [अमनाः] मन से रहित, [अनिन्द्रियः] इन्द्रिय-रहित, [ज्ञानमयः] ज्ञानमयी, [मूर्तिविरहितः] अमूर्तीक, [चिन्मात्रः] चेतनामात्र [इन्द्रियविषयः नैव] इन्द्रियों का विषय नहीं है, [एतत् लक्षणं] ये लक्षण [निरुक्तम्] कहे गये हैं ।

+ ध्यान की विधि और उसका फल -

भव-तणु-भोय-विरत्त-मणु जो अप्पा झाएइ तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टेइ ॥३२॥

अन्वयार्थ : [यः भवतनुभोगविरक्तमनाः] जो संसार, शरीर और भोगों में विरक्त मन हुआ [आत्मानं ध्यायति] आत्मा को ध्याता है, [तस्य गुर्वी सांसारिकी वल्ली] उसकी मोटी संसाररूपी बेल [व्रुटयति] टूट जाती है ।

+ देह में ही परमात्मा का निवास -

देहादेवलि जो वसइ देउ अणाइ-अणंतु केवल-णाण-फुरंत-तणु सो परमप्पु णिभंतु ॥३३॥

अन्वयार्थ : [यः देहदेवालये वसति] जो देहरूपी देवालय में बसने वाला, [देवः अनाद्यनन्तः] पूज्य, अनादि-अनंत, [केवलज्ञानस्फुरत्तनुः] केवलज्ञान से स्फुरायमान, [सः परमात्मा निर्भ्रान्तः] वही परमात्मा है, इसमें कुछ संशय नहीं ।

+ परमात्मा का एक अद्भुत लक्षण -

देहे वसंतु वि णवि छिवइ णियमें देहु वि जो जि
देहँ छिप्पइ जो वि णवि मुणि परमप्पउ सो जि ॥३४॥

अन्वयार्थ : [य एव देहे वसन्नपि] जो देह में रहता हुआ भी [नियमेन देहमपि] नियम से शरीर को [नैव स्पृशति] नहीं स्पर्श करता, [देहेन यः अपि] देह से वह भी [नैव स्पृश्यते] नहीं छुआ जाता [तमेव] उसी को [परमात्मानं मन्यस्व] परमात्मा जान ।

+ परमात्मा - समभाव द्वारा परम आनन्द की प्राप्ति -

जो सम-भाव -परिट्टियहं जोइहँ कोइ फुरेइ
परमाणंदु जणंतु फुडु सो परमप्पु हवेइ ॥३५॥

अन्वयार्थ : [समभावप्रतिष्ठितानां योगिनां] समभाव में परिणत योगियों के [परमानन्दं जनयन्] परम आनन्दको उत्पन्न करता हुआ [यः कश्चित् स्फुरति] जो कोई प्रकट होता है, [स्फुटं परमात्मा भवति] वही स्पष्ट परमात्मा है ।

+ आत्मा का परम आत्मा स्वरूप -

कम्म-णिबद्धु वि जोइया देहि वसंतु वि जो जि
होइ ण सयलु कया वि फुडु मुणि परमप्पउ सो जि ॥३६॥

अन्वयार्थ : [योगिन् यः] हे योगी जो यह (परमात्मा) [कर्मनिबद्धोऽपि] यद्यपि कर्मों से बँधा है, [देहे वसन्नपि] देह में रहता भी है, [कदापि सकलः न भवति] परंतु कभी देहरूप नहीं होता, [तमेव परमात्मानं स्फुटं मन्यस्व] तू उसी को निश्चित परमात्मा जान ।

+ पूर्व कथन की पुष्टि -

जो परमत्थँ णिक्कलु वि कम्म-विभिण्णउ जो जि
मूढा सयलु भणंति फुडु मुणि परमप्पउ सो जि ॥३७॥

अन्वयार्थ : [यः परमार्थेन] जो परमार्थ से [निष्कलोऽपि] शरीर-रहित, [कर्मविभिन्नोऽपि] कर्मों से जुदा है, तो भी [मूढाः सकलं] मूर्ख शरीरस्वरूप ही [स्फुटं भणन्ति] स्पष्ट मानते हैं, [तमेव परमात्मानं मन्यस्व] तू उसी को परमात्मा जान ।

+ परमात्मा - केवलज्ञान में स्वयं प्रतिभासित -

गयणि अणंति वि एक्क उडु जेहउ भुयणु विहाइ
मुक्कहँ जसु पए बिंबियउ सो परमप्पु अणाइ ॥३८॥

अन्वयार्थ : [गगने अनन्तेऽपि] अनंत आकाश में [एकं उडु यथा] एक नक्षत्र के जैसे [भुवनं विभाति] तीन लोक भासता है [मुक्तस्य यस्य पदे] जिस मुक्त के केवलज्ञान में [बिम्बितं सः परमात्मा अनादिः] बिंबित वह परमात्मा अनादि है ।

+ परमात्मा - ध्यान का ध्येय -

जोइय-विंदहिं णाणमउ जो झाइज्जइ झेउ
मोक्खहँ कारणि अणवरउ सो परमप्पउ देउ ॥३९॥

अन्वयार्थ : [योगीन्द्रवृन्दैः] योगियों द्वारा वन्दित [ज्ञानमयः यो] ज्ञानमयी जो [मोक्षस्य कारणे] मोक्ष के निमित्त [अनवरतं ध्यायते ध्येयः] निरन्तर ध्यान का ध्येय, [सः परमात्मा देवः] वह परमात्मदेव है ।

+ परमात्मा - संसार को उपजाता है -

जो जिउ हेउ लहेवि विहि जगु बहु-विहउ जणेइ
लिंगत्तय-परिमंडियउ सो परमप्पु हवेइ ॥४०॥

अन्वयार्थ : [यः जीवः] जो जीव [विधिं हेतुं लब्ध्वा] विधिरूप (कर्म) कारणों को पाकर [बहुविधं जगत् जनयति] अनेक प्रकार के जगत् को पैदा करता है [लिङ्गत्रयपरिमण्डितः] तीन लिंगों (स्त्री, पुरुष, नपुंसक) को धारण करता है, [सः परमात्मा भवति] वही परमात्मा है ।

+ परमात्मा - संसार में रहते हुए भी संसार से परे -

जसु अब्भंतरि जगु वसइ जग-अब्भंतरि जो जि
जगि जि वसंतु वि जगु जि ण वि मुणि परमप्पउ सो जि ॥४१॥

अन्वयार्थ : [यस्य अभ्यन्तरे] जिसके अन्दर में [जगत् वसति] संसार बसता है, [जगदभ्यन्तरे] और जगत् में वह बस रहा है, [जगति एव वसन्नपि] संसार में निवास करता हुआ भी [जगत् एव नापि] जगत् जिसमें नहीं, [तमेव परमात्मानं मन्यस्व] उसे ही तू परमात्मा जान ।

+ परमात्मा - उत्कृष्ट समाधि / तप द्वारा ही जो जाना जाता है -

देहि वसंतु वि हरि-हर वि जं अज्ज वि ण मुणंति
परम-समाहि-तवेण विणु सो परमप्पु भणंति ॥४२॥

अन्वयार्थ : [देहे वसन्तमपि] शरीर में बसने पर भी [यं हरिहरा अपि] जिसको नारायण / रूद्र सरीखे चतुर पुरुष भी [परमसमाधितपसा विना] परमसमाधिभूत महातप के बिना [अद्य अपि न जानन्ति] अबतक भी नहीं जानते, [तं परमात्मानं भणन्ति] उसको परमात्मा कहा है ।

+ परमात्मा - उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त -

भावाभावहिं संजुवउ भावाभावहिं जो जि ।
देहि जि दिट्ठउ जिणवरहिं मुणि परमप्पउ सो जि ॥४३॥

अन्वयार्थ : [य एव भावाभावाभ्यां संयुक्तः] जिसे उत्पाद-व्यय से सहित और [भावाभावाभ्यां] उत्पाद और विनाश से रहित [जिनवरैः] जिनवरदेव ने [देहे अपि द्रष्टः] देह में ही देख लिया, [तमेव परमात्मानं मन्यस्व] उसी को तू परमात्मा जान ।

+ शरीर और आत्मा के दृढ़ सम्बन्ध का सीधे साधे शब्दों में कथन -

**देहि वसंतें जेण पर इंदिय-गामु वसेइ
उव्वसु होइ गएण फुडु सो परमप्पु हवेइ ॥४४॥**

अन्वयार्थ : [येन परं देहे वसता] जिसके देह में रहने से पर ही [इन्द्रियग्रामः वसति] इन्द्रिय गाँव बसता है, [उद्धसः भवति गतेन] जाने पर उजड़ जाता है [स्फुटं स परमात्मा भवति] निश्चय से वह परमात्मा है ।

+ देह से आत्मा का विशिष्ट महत्व -

**जो णिय-करणहिँ पंचहिँ वि पंच वि विसय मुणेइ
मुणिउ ण पंचहिँ पंचहिँ वि सो परमप्पु हवेइ ॥४५॥**

अन्वयार्थ : [यः निजकरणैः पञ्चभिरपि] जो अपनी पाँचों इन्द्रियो द्वारा [पञ्चापि विषयान् जानाति] पाँचों ही विषयों को जानता है, [पञ्चभिः] पाँच इन्द्रियों के [पञ्चभिरपि मतो न] पाँचों विषयों से भी जो नहीं जाना जाता, [स परमात्मा भवति] वही परमात्मा है ।

+ परमात्मा का वीतराग स्वरूप -

**जसु परमत्थें बंधु णवि जोइय ण वि संसारु
सो परमप्पु जाणि तुहुँ मणि मिल्लिवि ववहारु ॥४६॥**

अन्वयार्थ : [हे योगिन् यस्य] हे योगी, जिसके [परमार्थेन संसारः नैव] निश्चय से संसार नहीं, [बन्धोनापि] बंध भी नहीं, [तं परमात्मनं त्वं] उस परमात्मा को तू [मनसि व्यवहारम् मुक्त्वा जानीहि] मन से व्यवहार मुक्त जान ।

+ परमात्मा के ज्ञान के स्थान का कथन -

**णेयाभावे विल्लि जिम थक्कइ णाणु वलेवि
मुक्कहँ जसु पय बिंबियउ परम-सहाउ भणेवि ॥४७॥**

अन्वयार्थ : [विल्लि तिष्ठति] बेल (लता) ठहरती है [यथा] जैसे, [मुक्तानां ज्ञानं] मुक्त (जीवों) का ज्ञान [बलेपि] शक्ति होने पर भी [ज्ञेयाभावे तिष्ठति] ज्ञेय के अभाव में ठहर जाता है, [यस्य पदे] उस केवलज्ञान द्वारा [बिम्बितं] प्रतिभासित [परमस्वभावं] अपना उत्कृष्ट स्वभाव [भणित्वा] जानो ।

+ कर्म बंधन से मुक्त परमात्मा का स्वरूप -

**णेयाभावे विल्लि जिम थक्कइ णाणु वलेवि
मुक्कहँ जसु पय बिंबियउ परम-सहाउ भणेवि ॥४८॥**

अन्वयार्थ : [कर्मभिः सदापि] कर्म सदा ही [निजनिजकार्यं जनयद्भिरपि] अपने अपने कार्य को प्रगट करते हैं; [यस्य किमपि] जिसमें कुछ भी [न जनितः नैव हतः] न उत्पन्न और न

विनाश हो, [तं परमात्मानं भावय] उसी परमात्मा की भावना कर ।

+ कर्म बंधन से मुक्त परमात्मा का स्वरूप -

कम्म-णिबद्धु वि होइ णवि जो फुडु कम्मु कया वि
कम्मु वि जो ण कया वि फुडु सो परमप्पउ भावि ॥४९॥

अन्वयार्थ : [यः कर्मनिबद्धोऽपि] जो कर्मों से बँधा हुआ होने पर भी [कदाचिदपि कर्म नैव स्फुटं भवति] कभी भी कर्मरूप नहीं होता, [कर्म अपि यः] और कर्म भी जिस रूप [कदाचिदपि स्फुटं न] कभी भी स्पष्ट नहीं होते, [तं परमात्मानं भावय] उस परमात्मा को जान ।

+ आत्मा क्या है -

कि वि भणंति जिउ सव्वगउ जिउ जडु के वि भणंति
कि वि भणंति जिउ देह-समु सुण्णु वि के वि भणंति ॥५०॥

अन्वयार्थ : [केऽपि जीवं सर्वगतं भणंति] कोई जीव को सर्वव्यापक कहते हैं, [केऽपि जीवं जडं भणंति] कोई जीव को जड़ कहते हैं, [केऽपि शून्यं अपि भणंति] कोई शून्य भी कहते हैं, [केऽपि जीवं देहसमं भणंति] कोई जीव को देहसमान कहते हैं ।

+ आत्मा का स्वरूप -

अप्पा जोइय सव्व-गउ अप्पा जडु वि वियाणि
अप्पा देह-पमाणु मुणि अप्पा सुण्णु वियाणि ॥५१॥

अन्वयार्थ : [हे योगिन् आत्मा सर्वगतः] हे योगी, आत्मा सर्वगत भी है, [आत्मा जडोऽपि विजानीहि] आत्मा को जड़ भी जान, [आत्मानं देहप्रमाणं मन्यस्व] आत्मा को देह बराबर मान, [आत्मानं शून्य विजानीहि] आत्मा को शून्य भी जान ।

+ आत्मा का सर्वव्यापक स्वरूप -

अप्पा कम्म - विवज्जियउ केवल-णारुँ जेण
लोयालोउ वि मुणइ जिय सव्वगु वुच्चइ तेण ॥५२॥

अन्वयार्थ : [आत्मा कर्मविवर्जितः] आत्मा कर्म-रहित हुआ [केवलज्ञानेन येन] केवलज्ञान से जिस कारण [लोकालोकमपि मनुते] लोक और अलोक को जानता है [तेन जीव] इसीलिये जीव को [सर्वगः उच्यते] सर्वगत कहा है ।

+ आत्मा का जड स्वरूप -

जे णिय-बोह -परिट्ठियहँ जीवहँ तुट्ठइ णाणु
इंदिय-जणियउ जोइया तिं जिउ जडु वि वियाणु ॥५३॥

अन्वयार्थ : [येन निजबोधप्रतिष्ठितानां जीवानां] चूंकि आत्म-ज्ञान में ठहरे हुए (केवलज्ञानी) जीवों के [इन्द्रियजनितं ज्ञानम्] इन्द्रिय-जनित ज्ञान [व्रुटयति हे योगिन्] नष्ट हो जाता है, हे योगी, [तेन जीवं जडमपि विजानीहि] उसी कारण से जीव को जड़ भी जानो ।

+ आत्मा का चरम शरीर प्रमाणरूप स्वरूप -

**कारण - विरहिउ सुद्ध-जिउ वड्डइ खिरइ ण जेण
चरम-सरीर-पमाणु जिउ जिणवर बोल्लहिं तेण ॥५४॥**

अन्वयार्थ : [येन कारणविरहितः] जिस हेतु कारण के अभाव में [शुद्धजीवः न वर्धते क्षरति] शुद्ध-जीव न तो बढ़ता है, और न घटता है, [तेन जिनवराः] इसी कारण जिनेन्द्रदेव [जीवं चरमशरीरप्रमाणं ब्रुवन्ति] जीव को चरम-शरीर-प्रमाण कहते हैं ।

+ आत्मा के शून्य स्वरूप का कथन -

**अट्ठ वि कम्मइँ बहुविहइँ णवणव दोस वि जेण
सुद्धहँ एक्कुवि अत्थि णवि सुण्णु वि वुच्चइ तेण ॥५५॥**

अन्वयार्थ : [येन अष्टौ अपि] जिस कारण आठों ही [बहुविधानि कर्माणि] अनेक भेदोंवाले कर्म [नवनव दोषा अपि एकः अपि] अठारह ही दोष इनमें से एक भी [शुद्धानां नैव अस्ति] शुद्धात्माओं में नहीं है, [तेन शून्योऽपि भण्यते] इसलिये शून्य भी कहा जाता है ।

+ आत्मा के लक्षण -

**अप्पा जणियउ केण ण वि अप्पेँ जणिउ ण कोइ
दव्व-सहावेँ णिच्चु मुणि पज्जउ विणसइ होइ ॥५६॥**

अन्वयार्थ : [आत्मा केन अपि न जनितं] आत्मा किसी से भी उत्पन्न नहीं हुआ, [आत्मना जनितं न किमपि] और आत्मा से कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं हुआ, [द्रव्यस्वभावेन नित्यं मन्यस्व] द्रव्य-स्वभाव को नित्य जानो, [पर्यायः विनश्यति भवति] पर्याय नष्ट होती है ।

+ आत्मा के लक्षण का स्पष्टीकरण -

**तं परियाणहि दव्वु तुहुँ जं गुण-पज्जय-जुत्तु
सह-भुव जाणहि ताहुँ गुण कम-भुव पज्जउ वुत्तु ॥५७॥**

अन्वयार्थ : [यत् गुणपर्याययुक्तं] जो गुण और पर्यायों से सहित है, [तत् त्वं द्रव्यं परिजानीहि] उसको तू द्रव्य जान, [सहभुवः तेषां गुणाः] सदा साथ हों उन्हें गुण, [क्रमभुवः पर्यायाः उक्ताः] और जो क्रम से हों उन्हें पर्याय कहा है ।

**अप्पा बुज्झहि दव्वु तुहुँ गुण पुणु दंसणु णाणु
पज्जय चउ-गइ-भाव तणु कम्म-विणिम्मिय जाणु ॥५८॥**

अन्वयार्थ : [त्वं आत्मानं द्रव्यं] तू आत्मा को द्रव्य, [पुनः दर्शनं ज्ञानम् गुणौ बुध्यस्व] और दर्शन ज्ञान को गुण जान, [चतुर्गतिभावान् तनुं] चार गतियों के भाव तथा शरीर को [कर्मविनिर्मितान् पर्यायान् जानीहि] कर्म-जनित पर्याय समझ ।

+ आत्मा और कर्म का परस्पर सम्बन्ध -

जीवहँ कम्मु अणाइ जिय जणियउ कम्मु ण तेण
कम्मँ जीउ वि जणियउ णवि दोहिँ वि आइ ण जेण ॥५९॥

अन्वयार्थ : हे जीव! जीवों का कर्म अनादिकाल से चला आता हुआ है, उस जीव के द्वारा कर्म उत्पन्न नहीं किया गया, कर्म के द्वारा भी यह जीव उत्पन्न नहीं किया गया, जिससे इन दोनों का ही आदि नहीं है ।

+ सभी जीवों का प्राण कर्म -

एहु ववहारँ जीवउउ हेउ लहेविणु कम्मु
बहुविह-भावेँ परिणवइ तेण जि धम्मु-अहम्मु ॥६०॥

अन्वयार्थ : यह जीव कर्म (रूप) कारण को प्राप्तकर अनेक प्रकार के भाव से रूपान्तर को प्राप्त होता है, उससे ही धर्म और अधर्म होता है ।

+ कर्म के कारण जीव को स्वभाव-लाभ नहीं -

ते पुणु जीवहँ जोइया अट्टु वि कम्म हवंति ।
जेहिँ जि झंपिय जीव णवि अप्प-सहाउ लहंति ॥६१॥

अन्वयार्थ : [योगिन्] हे योगी, [तानि पुनः कर्माणि] वे फिर कर्म [जीवानां अष्टौ अपि] जीवों के आठ ही [भवन्ति] होते हैं, [यैः एव झंपिताः] जिन कर्मों से ही आच्छादित (ढँके हुए) [जीवाः] ये जीव [आत्मस्वभावां] अपने सम्यक्त्वादि आठ गुणरूप स्वभाव को [नैव लभन्ते] नहीं पाते ।

+ विषय-कषायों में लिप्तता से कर्म-बंध -

विसय-कसायहिँ रंगियहँ ते अणुया लगगंति ।
जीव-पएसेहँ मोहियहँ ते जिण कम्म भणंति ॥६२॥

अन्वयार्थ : [विषयकषायैः रञ्जितानां] विषय-कषायों में लिप्त [मोहितानां] मोही जीवों के [जीवप्रदेशेषु] जीव के प्रदेशों में [ये अणवः लगंति] जो परमाणु लगते (बंधते) हैं, [तान्] उन्हें (उन स्कंधों को) [जिनाः कर्म भणंति] जिनेन्द्रदेव कर्म कहते हैं ।

+ इन्द्रियाँ, मन, समस्त विभाव, दुःख कर्म-जनित -

पंच वि इंदिय अणु मणु अणु वि सयल-विभाव ।
जीवहँ कम्मइँ जणिय जिय अणु वि चउगइ-ताव ॥६३॥

अन्वयार्थ : [पंचापि इन्द्रियाणि अन्यत्] पाँचों ही इन्द्रियाँ भिन्न हैं, [मनः अपि सकलविभावः] मन और समस्त विभाव परिणाम [अन्यत्] अन्य हैं, [चतुर्गतितापाः अपि] तथा चारों गतियों के दुःख भी [अन्यत्] अन्य हैं, [जीव] हे जीव, ये सब [जीवानां] जीवों के [कर्मणा जनिताः] कर्म-जनित हैं ।

+ परमार्थ से दुःख-सुख कर्म जनित -

दुःखु वि सुखु वि बहु-विहउ जीवहँ कम्मु जणेइ ।
अप्पा देक्खइ मुणइ पर णिच्छउ एउँ भणेइ ॥६४॥

अन्वयार्थ : [जीवानां बहुविधं] जीवों को अनेक प्रकार के [दुःखमपि सुखं अपि] दुःख और सुख दोनों ही [कर्म जनयति] कर्म उपजाता है; [आत्मा पश्यति] आत्मा देखता [परं मनुते] और जानता है, [एवं निश्चयः] इस प्रकार परमार्थ [भणति] कहता है ।

+ परमार्थ से बन्ध और मोक्ष कर्मजनित -

बंधु वि मोक्खु वि सयलु जिय जीवहँ कम्मु जणेइ ।
अप्पा किंपि वि कुणइ णवि णिच्छउ एउँ भणेइ ॥६५॥

अन्वयार्थ : [जीन] जे जीव ! [बंधमपि मोक्षमपि] बंध भी और मोक्ष भी [सकलं जीवानां] समस्त जीवों के [कर्म जनयति] कर्म जनित है, [आत्मा किमपि] आत्मा कुछ भी [नैव करोति] नहीं करता, [एवं निश्चयः भणति] ऐसा परमार्थ कहता है ।

श्री श्रुतस्कन्ध यन्त्र

णमो अरिहताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

